International Journal of Technology and Applied Science (IJTAS)
E-ISSN: 2230-9004 ● Website: www.ijtas.com ● Email: editor@ijtas.com

भारत के 2019 लोकसभा चुनाव में जातीय समीकरण आधारित मतदान व्यवहार का अध्ययन

डॉ. राकेश कुमार जायसवाल

असिस्टेंट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बदायूँ, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
भारतीय लोकतंत्र की सबसे विशिष्ट और जटिल विशेषताओं में से एक यह है कि यहाँ मतदान व्यवहार केवल नीतिगत मुद्दों, आर्थिक अपेक्षाओं या नेतृत्व के व्यक्तित्व से निर्धारित नहीं होता, बल्कि सामाजिक संरचना, सामुदायिक पहचान, स्थानीय शक्ति-संतुलन और ऐतिहासिक राजनीतिक स्मृतियों से भी गहराई से प्रभावित होता है। इन कारकों में जाति का स्थान अत्यंत केंद्रीय रहा है। 2019 के लोकसभा चुनाव, जिनमें भारतीय जनता पार्टी ने 303 सीटों के साथ पूर्ण बहुमत प्राप्त किया, इस बात का महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं कि जाति भारतीय राजनीति में अब भी एक निर्णायक कारक है; किंतु यह प्रभाव अब अपने पारंपरिक रूप से बदलकर अधिक जटिल, बहुस्तरीय और रणनीतिक स्वरूप ग्रहण कर चुका है। 2019 के चुनावों में जातीय समीकरण केवल "एक जाति बनाम दूसरी जाति" की रेखा तक सीमित नहीं रहे, बल्कि दलों ने उपजातीय समूहों, गैर-प्रमुख सामाजिक वर्गों, क्षेत्रीय पहचान, धार्मिक ध्रुवीकरण, नेतृत्व की स्वीकार्यता और राष्ट्रवादी विमर्श के साथ जातीय गठजोड़ का नया संयोजन निर्मित किया। यह शोधपत्र भारत के 2019 लोकसभा चुनाव में जातीय समीकरण आधारित मतदान व्यवहार का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि जाति ने मतदाता के निर्णय को किस प्रकार प्रभावित किया, किन राज्यों में यह प्रभाव सर्वाधिक स्पष्ट रहा, किन जातीय समूहों ने किस प्रकार मतदान किया, और किस सीमा तक राष्ट्रीय मुद्दे—जैसे राष्ट्रवाद, नेतृत्व, कल्याणकारी योजनाएँ और विकास—जातीय गणित के साथ अंतःक्रिया करते दिखाई दिए। अध्ययन में उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा व्यापक राष्ट्रीय रुझानों के संदर्भ में मतदान व्यवहार का विवेचन किया गया है। विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में भाजपा द्वारा गैर-यादव ओबीसी और गैर-जाटव दलित समूहों के समेकन तथा समाजवादी पार्टी–बहुजन समाज पार्टी गठबंधन द्वारा यादव–जाटव–मुस्लिम समीकरण पर निर्भरता का तुलनात्मक विश्लेषण इस शोध का केंद्रीय भाग है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 2019 के लोकसभा चुनाव में जाति का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ, बल्कि उसने नया रूप धारण किया। भाजपा ने पारंपरिक जातीय ध्रुवीकरण को तोड़ते हुए बहुस्तरीय सामाजिक गठबंधन तैयार किया, जिसमें ऊँची जातियों के अतिरिक्त गैर-यादव पिछड़े वर्गों, गैर-जाटव दलितों और लाभार्थी समूहों को जोड़ा गया। दूसरी ओर, विपक्षी दल अनेक राज्यों में जाति-आधारित गठबंधनों के बावजूद इस सामाजिक पुनर्संयोजन को पर्याप्त रूप से चुनौती नहीं दे सके। इससे यह सिद्ध होता है कि समकालीन भारतीय चुनावों में जाति अब भी निर्णायक है, किंतु उसका प्रभाव नेतृत्व, कल्याण, पहचान-राजनीति और राष्ट्रीय आख्यानों के साथ मिलकर कार्य करता है। अतः 2019 का चुनाव भारतीय लोकतंत्र में जाति की निरंतरता और उसके रूपांतरण, दोनों को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मुख्य शब्दः लोकसभा चुनाव 2019, जाति, मतदान व्यवहार, पहचान-राजनीति, ओबीसी, दलित, भाजपा, उत्तर प्रदेश, चुनावी समाजशास्त्र

1. प्रस्तावना
भारत में चुनाव केवल सत्ता-परिवर्तन की संवैधानिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि समाज की संरचना, असमानता, आकांक्षाओं और सामूहिक पहचानों का सार्वजनिक प्रदर्शन भी हैं। भारतीय मतदाता का निर्णय अनेक स्तरों पर निर्मित होता है—वह स्थानीय उम्मीदवार, पार्टी संगठन, क्षेत्रीय हित, जातीय संबद्धता, धार्मिक पहचान, नेतृत्व, सरकारी योजनाओं के

लाभ, मीडिया विमर्श और राष्ट्रीय घटनाओं से प्रभावित होता है। इन समस्त कारकों के बीच जाति लंबे समय से भारतीय चुनावी राजनीति की धुरी रही है। यह विशेष रूप से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय समाज की ऐतिहासिक संरचना, सामाजिक सम्मान, संसाधनों तक पहुँच, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और स्थानीय प्रभुत्व का संबंध जाति से गहरे रूप में जुड़ा रहा है।

लोकसभा चुनाव 2019 भारतीय राजनीति में एक निर्णायक मोड़ के रूप में सामने आया। 2014 में भाजपा ने बहुमत प्राप्त कर भारतीय पार्टी-प्रणाली में बड़ा परिवर्तन किया था; 2019 में उसने इस सफलता को और भी अधिक व्यापक रूप से दोहराया। भाजपा की 303 सीटों की जीत केवल संसदीय संख्या भर नहीं थी; यह सामाजिक आधार के विस्तार, विपक्ष की रणनीतिक विफलताओं, नेतृत्व की केंद्रीकृत स्वीकार्यता और चुनावी आख्यानों की प्रभावशीलता का भी परिणाम थी। इस चुनाव में कई विश्लेषकों ने यह प्रश्न उठाया कि क्या राष्ट्रवाद, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की लोकप्रियता, केंद्र सरकार की कल्याणकारी योजनाएँ और कमजोर विपक्ष ने जाति की भूमिका को कम कर दिया था। दूसरी ओर अनेक विद्वानों और चुनावी अध्ययनों ने संकेत किया कि जाति का महत्व कम नहीं हुआ, बल्कि उसने नए गठबंधन-तंत्र के भीतर अपना स्वरूप बदल लिया। उत्तर प्रदेश इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण था। यहाँ समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी ने यादव, जाटव और मुस्लिम मतदाताओं के पारंपरिक सामाजिक आधार को मिलाकर भाजपा को चुनौती देने का प्रयास किया। सामान्य राजनीतिक गणित के अनुसार यह गठबंधन भाजपा के लिए गंभीर चुनौती होना चाहिए था। किंतु वास्तविक चुनाव परिणामों ने दिखाया कि भाजपा ने ऊँची जातियों के अतिरिक्त गैर-यादव अन्य पिछड़ा वर्ग, गैर-जाटव अनुसूचित जाति समूहों, कुछ अति-पिछड़ी जातियों और लाभार्थी वर्गों के बीच उल्लेखनीय समर्थन अर्जित कर लिया था। यह घटना भारतीय चुनावी राजनीति में जाति के पुनर्संयोजन का सशक्त संकेतक थी।

बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में भी सामाजिक समीकरणों की जटिलता दिखाई दी। कुछ स्थानों पर जाति और धर्म का गठजोड़ अधिक स्पष्ट था, तो कुछ स्थानों पर नेतृत्व, राष्ट्रीय सुरक्षा और सरकारी योजनाओं ने जातीय विभाजनों को आंशिक रूप से पुनर्परिभाषित किया। अभिजीत बनर्जी और अन्य शोधकर्ताओं द्वारा किए गए विश्लेषणों ने भी यह संकेत दिया कि मतदाताओं के निर्णय में शिक्षा, आय अथवा रोजगार जैसे मुद्दों की अपेक्षा पहचान-आधारित कारक अधिक प्रभावी रहे। यह स्थिति भारतीय लोकतंत्र के समक्ष एक गंभीर बौद्धिक प्रश्न उपस्थित करती है—क्या भारतीय मतदाता अब भी मुख्यतः सामाजिक पहचान के आधार पर मतदान करता है, या वह पहचान और नीति के मिश्रित ढाँचे में निर्णय लेता है? प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य 2019 के लोकसभा चुनाव में जातीय समीकरण आधारित मतदान व्यवहार का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करना है। यह अध्ययन इस धारणा की जाँच करता है कि जाति भारतीय राजनीति में अब भी केंद्रीय है, किंतु उसकी राजनीतिक अभिव्यक्ति अधिक सूक्ष्म, बहुस्तरीय और रणनीतिक हो चुकी है। इस शोध में जाति को केवल सामाजिक श्रेणी नहीं, बल्कि राजनीतिक संसाधन, प्रतीकात्मक पहचान, प्रतिनिधित्व की माँग और दलगत संगठन के उपकरण के रूप में देखा गया है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

इस शोधपत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. पहला, भारत के 2019 लोकसभा चुनाव में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले जातीय कारकों का विश्लेषण करना।
2. दूसरा, यह अध्ययन करना कि विभिन्न राजनीतिक दलों ने किस प्रकार जाति-आधारित गठबंधनों, उम्मीदवार चयन और चुनावी रणनीति के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करने का प्रयास किया।
3. तीसरा, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा अन्य प्रमुख राज्यों के संदर्भ में जातीय समीकरणों के चुनावी प्रभाव का तुलनात्मक परीक्षण करना।
4. चौथा, यह समझना कि राष्ट्रवाद, नेतृत्व, कल्याणकारी योजनाएँ, विकास और धर्म जैसे कारकों ने जाति के साथ किस प्रकार अंतःक्रिया की।

5. पाँचवाँ, 2019 के चुनावों के आधार पर भारतीय लोकतंत्र में जाति की निरंतरता और परिवर्तनशीलता का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना।

3. शोध पद्धति

यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। शोध में चुनाव परिणामों, निर्वाचन आयोग के आँकड़ों, विभिन्न सर्वेक्षणों, शोधपत्रों, समाचार-विश्लेषणों, राजनीतिक टिप्पणीकारों के अध्ययन, समाजशास्त्रीय साहित्य और चुनावोत्तर विश्लेषणों का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक है। प्रथम चरण में भारतीय मतदान व्यवहार में जाति की ऐतिहासिक और सैद्धांतिक भूमिका की संक्षिप्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। द्वितीय चरण में 2019 के लोकसभा चुनाव के राष्ट्रीय और प्रादेशिक संदर्भ को स्पष्ट किया गया है। तृतीय चरण में जातीय समीकरणों का राज्यवार और समूहवार विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ चरण में जाति और अन्य कारकों—जैसे राष्ट्रवाद, धर्म, कल्याण, नेतृत्व—के अंतर्संबंध का अध्ययन किया गया है। अंततः समालोचनात्मक विवेचना के माध्यम से निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि मतदान व्यवहार का पूर्ण आकलन केवल सांख्यिकीय डेटा से संभव नहीं होता, क्योंकि अनेक बार मतदाता अपनी वास्तविक प्रेरणाएँ प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त नहीं करता। फिर भी उपलब्ध प्रामाणिक स्रोतों और चुनावी अध्ययनों के आधार पर यह शोध एक संगत और विश्वसनीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

4. भारतीय चुनावी राजनीति में जाति: एक सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

भारत में जाति केवल सामाजिक संरचना का अंग नहीं, बल्कि राजनीतिक संसाधन, सामाजिक संगठन और प्रतिनिधित्व की माँग का माध्यम भी रही है। लोकतंत्र के विस्तार के साथ जाति की राजनीति समाप्त नहीं हुई; बल्कि उसने नई ऊर्जा के साथ चुनावी राजनीति में प्रवेश किया। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार ने उन समूहों को भी राजनीतिक शक्ति प्रदान की जो परंपरागत सामाजिक व्यवस्था में हाशिए पर थे। परिणामस्वरूप जाति ने चुनाव में तीन स्तरों पर भूमिका निभाई: पहचान, संगठन और प्रतिनिधित्व।

पहचान के स्तर पर मतदाता अपनी जातीय संबद्धता के आधार पर उस दल या उम्मीदवार के निकट जा सकता है जिसे वह “अपना” समझता है। संगठन के स्तर पर जाति पंचायतें, बिरादरी नेटवर्क, स्थानीय प्रभावशाली व्यक्ति और सामुदायिक संगठन मतदान को प्रभावित करते हैं। प्रतिनिधित्व के स्तर पर मतदाता यह देखता है कि कौन-सी पार्टी उसकी जाति को राजनीतिक हिस्सेदारी, टिकट, मंत्रीपद या नीतिगत लाभ देती है।

भारत के विभिन्न राज्यों में जाति की राजनीति का रूप अलग-अलग रहा है। उत्तर भारत में मंडल राजनीति के बाद पिछड़ी जातियों, दलितों और क्षेत्रीय दलों के उदय ने चुनावी प्रतियोगिता को जाति-आधारित आधार दिया। उत्तर प्रदेश में यादव, जाटव, ब्राह्मण, ठाकुर, कुर्मी, लोध, निषाद, पासी, मौर्य, शाक्य, राजभर जैसी अनेक जातियाँ राजनीतिक गठजोड़ों की धुरी बनीं। बिहार में यादव, कुर्मी, कोइरी, पासवान, भूमिहार, राजपूत और ब्राह्मण जैसे समूह महत्वपूर्ण रहे। इस प्रकार जाति भारतीय लोकतंत्र में केवल विभाजनकारी तत्व नहीं, बल्कि राजनीतिक भागीदारी का माध्यम भी रही।

हालाँकि समकालीन समय में जाति का राजनीतिक उपयोग अधिक जटिल हो गया है। अब जाति अकेले कार्य नहीं करती; वह धर्म, वर्ग, कल्याणकारी लाभ, नेतृत्व-विश्वास और मीडिया-निर्मित छवि के साथ मिलकर कार्य करती है। इसी संदर्भ में 2019 का चुनाव विश्लेषण योग्य है।

5. 2019 लोकसभा चुनाव का राजनीतिक संदर्भ

2019 का लोकसभा चुनाव कई असाधारण परिस्थितियों में संपन्न हुआ। एक ओर नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा ने 2014–2019 के बीच अपने संगठन, संदेश और नेतृत्व-केंद्रित राजनीति को मजबूत किया; दूसरी ओर विपक्ष बिखरा हुआ और नेतृत्वहीन दिखाई दे रहा था। पुलवामा हमले और बालाकोट एयरस्ट्राइक के बाद राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रवाद चुनावी विमर्श के केंद्र में आ गए। साथ ही उज्ज्वला, शौचालय, जनधन, प्रधानमंत्री आवास, आयुष्मान भारत जैसी योजनाओं ने गरीब तबकों और लाभार्थी समूहों के बीच सरकार की पहुँच को बढ़ाया।

लेकिन इस पूरे परिदृश्य में जाति का प्रश्न अप्रासंगिक नहीं हुआ। बल्कि भाजपा ने अपनी सामाजिक इंजीनियरिंग को 2014 की तुलना में और अधिक परिष्कृत किया। उसने केवल पारंपरिक ऊँची जाति समर्थन पर निर्भर रहने के बजाय गैर-यादव ओबीसी, गैर-जाटव दलित और छोटे क्षेत्रीय जातीय समूहों को प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व, संगठनात्मक समावेशन और नेतृत्व-भाषा के माध्यम से जोड़ने का प्रयास किया। दूसरी ओर अनेक क्षेत्रीय दल अपनी पारंपरिक जातीय आधार-राजनीति पर टिके रहे।

यह चुनाव इस अर्थ में नया था कि जाति और राष्ट्रवाद परस्पर विरोधी न होकर कई क्षेत्रों में पूरक रूप में कार्य कर रहे थे। मतदाता के सामने जातीय संबद्धता और राष्ट्रीय नेतृत्व का द्वंद्व नहीं, बल्कि कई बार उनका संयुक्त प्रभाव था। उदाहरणार्थ, कोई गैर-यादव ओबीसी मतदाता भाजपा को इसलिए चुन सकता था क्योंकि उसे उसमें जातीय प्रतिनिधित्व, सरकारी योजनाओं का लाभ और मजबूत राष्ट्रीय नेतृत्व—तीनों का संयोजन दिखाई दे रहा था। यह जटिलता 2019 के चुनाव को विश्लेषण की दृष्टि से विशेष बनाती है।

6. जातीय समीकरण का विश्लेषण

6.1 उत्तर प्रदेश: जातीय राजनीति का पुनर्संयोजन

उत्तर प्रदेश 2019 के चुनाव का सबसे महत्वपूर्ण राज्य था, क्योंकि लोकसभा की सर्वाधिक सीटें यहीं से आती हैं और राष्ट्रीय राजनीति का सामरिक संतुलन अक्सर यहीं तय होता है। लंबे समय तक यह राज्य जाति-आधारित दलगत राजनीति का केंद्र रहा है। समाजवादी पार्टी का प्रमुख आधार यादव और कुछ मुस्लिम समूह रहे, जबकि बहुजन समाज पार्टी का मूल आधार जाटव दलित समुदाय रहा। कांग्रेस का आधार काफी कमजोर हो चुका था। भाजपा ने 2014 के बाद से यहाँ नई सामाजिक इंजीनियरिंग विकसित की।

2019 में सपा-बसपा गठबंधन को व्यापक रूप से "महागठबंधन" कहा गया और यह माना गया कि यदि यादव, जाटव और मुस्लिम मत एकजुट हो जाएँ, तो भाजपा को गंभीर नुकसान होगा। लेकिन चुनाव परिणामों ने दिखाया कि केवल अंकगणित पर्याप्त नहीं होता; सामाजिक-राजनीतिक रसायन भी आवश्यक है। भाजपा ने ऊँची जातियों के लगभग समेकित समर्थन के साथ-साथ गैर-यादव ओबीसी और गैर-जाटव दलित मतदाताओं में उल्लेखनीय पैठ बनाई।

कुर्मी, निषाद, मौर्य, शाक्य, कुशवाहा, लोध, राजभर, पटेल और अन्य अति पिछड़ी जातियों में भाजपा का समर्थन बढ़ा। इन समूहों में यह भावना थी कि मंडल-युग की राजनीति में यादवों को अपेक्षाकृत अधिक लाभ मिला, जबकि अन्य पिछड़ी जातियाँ प्रतिनिधित्व से वंचित रहीं। भाजपा ने इस असंतोष को राजनीतिक अवसर में बदला। उसने छोटे जातीय समूहों के नेताओं को टिकट दिया, संगठन में स्थान दिया और उन्हें व्यापक हिंदू पहचान और विकास-लाभार्थी विमर्श से जोड़ा।

इसी प्रकार दलित राजनीति में भी भाजपा ने गैर-जाटव दलितों के बीच स्थान बनाया। जाटव समुदाय का झुकाव बसपा की ओर बना रहा, किंतु पासी, वाल्मीकि, कोरी और अन्य अनुसूचित जाति समूहों में भाजपा की पैठ देखी गई। यह संकेत था कि दलित राजनीति भी एकरैखिक नहीं रही।

उत्तर प्रदेश की कुछ सीटों पर स्थानीय जातीय संरचना अत्यंत निर्णायक रही। उदाहरण के लिए आगरा संसदीय क्षेत्र में वैश्य, दलित और मुस्लिम मतदाताओं का उल्लेखनीय अनुपात चुनावी गणित को प्रभावित करता था। ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों में उम्मीदवार चयन, जातीय प्रतीक, स्थानीय संगठन और ध्रुवीकरण सभी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उपलब्ध चुनावी विश्लेषणों से यह भी संकेत मिलता है कि भाजपा को ब्राह्मणों और अन्य ऊँची जातियों से बहुत मजबूत समर्थन प्राप्त हुआ, जबकि मुस्लिम मतों का झुकाव मुख्यतः भाजपा-विरोधी दलों की ओर रहा।

उत्तर प्रदेश का अनुभव बताता है कि 2019 के चुनाव में जाति का प्रभाव बना रहा, किंतु जातीय पहचान की पारंपरिक ध्रुवीयता टूटने लगी। भाजपा ने बहुस्तरीय सामाजिक गठबंधन बनाकर विपक्ष के पारंपरिक जातीय समीकरणों को चुनौती दी।

6.2 बिहार: जाति और गठबंधन का मिश्रित प्रभाव

बिहार में जाति-आधारित राजनीति का इतिहास अत्यंत गहरा है। मंडल राजनीति, सामाजिक न्याय, लालू प्रसाद यादव का उदय, नीतीश कुमार की पिछड़ी जाति राजनीति, और दलित-उपेक्षित वर्गों का प्रतिनिधित्व—इन सभी ने बिहार

को चुनावी समाजशास्त्र की प्रयोगशाला बना दिया। 2019 में बिहार में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का प्रदर्शन मजबूत रहा, जिसका कारण केवल मोदी फैक्टर नहीं था, बल्कि सामाजिक समीकरणों का प्रभावी प्रबंधन भी था।
राष्ट्रीय जनता दल का पारंपरिक यादव-मुस्लिम आधार मजबूत था, किंतु एनडीए में जदयू, भाजपा और लोजपा के बीच गठबंधन ने कुर्मी, कोइरी, अत्यंत पिछड़ी जातियों, ऊँची जातियों तथा पासवान मतदाताओं के बीच व्यापक सामाजिक आधार तैयार किया। बिहार में "अति पिछड़ा" समूह विशेष रूप से निर्णायक रहा। यह समूह न तो पारंपरिक ऊँची जाति राजनीति का अंग था और न ही यादव-केंद्रित पिछड़ा नेतृत्व से पूरी तरह संतुष्ट। एनडीए ने इस वर्ग में राजनीतिक अवसर देखा और सफलतापूर्वक उसे अपने साथ बनाए रखा।

बिहार के अनुभव से यह स्पष्ट होता है कि जाति-आधारित मतदान तब अधिक प्रभावी होता है जब वह गठबंधन-संरचना, नेतृत्व-विश्वास और चुनावी संगठन के साथ जुड़ता है। केवल एक जातीय आधार होने से चुनाव नहीं जीता जा सकता; उसके साथ सामाजिक विस्तार आवश्यक है। 2019 में एनडीए ने यही किया।

6.3 मध्य प्रदेश और अन्य राज्य: जाति की मिश्रित भूमिका

मध्य प्रदेश, राजस्थान और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में जाति उत्तर प्रदेश या बिहार जितनी प्रत्यक्ष चुनावी भाषा में उपस्थित नहीं दिखती, लेकिन इसका प्रभाव वहाँ भी पर्याप्त रूप से मौजूद था। मध्य प्रदेश में ऊँची जातियों, ओबीसी समूहों और अनुसूचित जाति-जनजाति मतदाताओं के बीच विभिन्न दलों ने अलग-अलग स्तर पर समर्थन जुटाने का प्रयास किया। यहाँ विकास, किसान मुद्दे, नेतृत्व और संगठन भी महत्वपूर्ण रहे। फिर भी उम्मीदवार चयन, स्थानीय प्रभुत्व और सामाजिक पहचान चुनावी परिणामों को प्रभावित करते रहे।
महाराष्ट्र में मराठा, ओबीसी, दलित और शहरी जातीय-वर्गीय समूहों के बीच मतदान व्यवहार जटिल रहा। पश्चिम बंगाल में जाति का प्रश्न धर्म और क्षेत्रीय पहचान की तुलना में अपेक्षाकृत कम मुखर था, किंतु अनुसूचित जाति, मतुआ समुदाय और अन्य सामाजिक समूहों के बीच दलगत प्रतिस्पर्धा स्पष्ट थी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 2019 में जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर पर समान नहीं थी, बल्कि राज्य-विशिष्ट सामाजिक संरचना के अनुसार उसका प्रभाव भिन्न-भिन्न था।

7. प्रमुख कारक और रुझान

7.1 पहचान की राजनीति

2019 के चुनावों में पहचान की राजनीति अत्यंत प्रभावशाली रही। जाति और धर्म दोनों ने अनेक क्षेत्रों में मतदाता के निर्णय को प्रभावित किया। अल्पसंख्यक समूहों में सामूहिक सुरक्षा और प्रतिनिधित्व की भावना, तथा बहुसंख्यक हिंदू पहचान के अंतर्गत उपजातीय समूहों का समेकन, दोनों समानांतर प्रक्रियाएँ थीं। इस कारण मतदान कई बार जातीय संबद्धता और धार्मिक ध्रुवीकरण के संयुक्त प्रभाव में हुआ।

7.2 उपजातीय सामाजिक इंजीनियरिंग

यह चुनाव इस अर्थ में विशिष्ट था कि बड़ी जातीय श्रेणियों के भीतर उपजातीय भिन्नताओं का राजनीतिक उपयोग अधिक परिष्कृत रूप में हुआ। भाजपा ने गैर-यादव ओबीसी और गैर-जाटव दलित समूहों में जिस प्रकार प्रवेश किया, उसने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय राजनीति में "ओबीसी" या "दलित" जैसी श्रेणियाँ राजनीतिक रूप से एकरूप नहीं हैं। प्रत्येक समूह के भीतर प्रतिनिधित्व, सम्मान और संसाधनों की अपनी आकांक्षाएँ हैं।

7.3 मोदी फैक्टर और जाति से ऊपर जाने का प्रश्न

अनेक विश्लेषकों ने 2019 के परिणामों को "मोदी फैक्टर" से जोड़ा। यह निश्चित रूप से सत्य है कि नरेंद्र मोदी की व्यक्तिगत लोकप्रियता, मजबूत नेतृत्व की छवि और राष्ट्रवादी विमर्श ने चुनावी परिणामों को प्रभावित किया। किंतु यह कहना कि इसने जाति को अप्रासंगिक बना दिया, एक अतिसरलीकरण होगा। अधिक उचित यह होगा कि मोदी फैक्टर ने जातीय समीकरणों को पुनर्गठित किया। उदाहरणार्थ, कई जातीय समूहों ने भाजपा को केवल हिंदुत्व या

राष्ट्रवाद के कारण नहीं, बल्कि इसलिए भी समर्थन दिया क्योंकि उन्हें लगा कि इस नेतृत्व के तहत उनकी जाति की भागीदारी, सम्मान और लाभ-साझेदारी सुनिश्चित हो सकती है।

7.4 कल्याणकारी योजनाएँ और लाभार्थी राजनीति

उज्ज्वला, शौचालय, आवास, बिजली और बैंक खाते जैसी योजनाओं ने लाभार्थी वर्ग तैयार किया। यह लाभार्थी राजनीति जाति-विहीन नहीं थी, बल्कि उसने कई जातीय समूहों में दल के प्रति सकारात्मक धारणा निर्मित की। गरीब ओबीसी, दलित और ग्रामीण मतदाता, जिन्हें प्रत्यक्ष लाभ मिला, वे जाति से परे नहीं गए; बल्कि कई मामलों में जातीय पहचान और लाभार्थी अनुभव ने मिलकर मतदान व्यवहार को आकार दिया।

7.5 स्थानीय बनाम राष्ट्रीय मुद्दे

कुछ अध्ययनों में यह पाया गया कि स्थानीय मुद्दों की अपेक्षा राष्ट्रीय नेतृत्व और राष्ट्रीय विमर्श अधिक प्रभावी रहे। फिर भी स्थानीय जातीय समीकरण समाप्त नहीं हुए। इससे यह स्पष्ट होता है कि 2019 में राष्ट्रीय आख्यानों ने स्थानीय सामाजिक संरचनाओं को प्रतिस्थापित नहीं किया, बल्कि उनके ऊपर एक अतिरिक्त राजनीतिक परत जोड़ दी।

8. मतदान व्यवहार पर शोध निष्कर्षों की व्याख्या

अभिजीत बनर्जी और अन्य शोधकर्ताओं के विश्लेषणों ने यह संकेत दिया कि 2019 के चुनावों में मतदाताओं के निर्णय में जाति और धर्म जैसे पहचान-आधारित कारक शिक्षा, आय और रोजगार की तुलना में अधिक प्रभावी थे। इस निष्कर्ष को भारतीय चुनावी परंपरा के संदर्भ में समझना चाहिए। भारत में सामाजिक पहचान केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि संरचनात्मक वास्तविकता है। किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, स्थानीय नेटवर्क, सामुदायिक असुरक्षा, राजनीतिक अवसर और प्रतिनिधित्व का अनुभव जाति से जुड़ा हो सकता है।
विभिन्न सर्वेक्षणों से भी यह संकेत मिला कि भाजपा को ऊँची जातियों में भारी समर्थन प्राप्त हुआ। इसके साथ ही उसने ओबीसी के बड़े हिस्से और दलितों के कुछ महत्वपूर्ण वर्गों तक भी पहुँच बनाई। मुस्लिम मतदाताओं का झुकाव मुख्यतः भाजपा-विरोधी दलों की ओर रहा। यह पैटर्न दर्शाता है कि 2019 का चुनाव धार्मिक ध्रुवीकरण और जातीय पुनर्संयोजन दोनों का मिश्रित परिणाम था।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मतदान व्यवहार को केवल जाति से समझना पर्याप्त नहीं है। कई मतदाता जातीय रूप से किसी दल के समीप होते हुए भी नेतृत्व, सुरक्षा, स्थिर सरकार, या योजनाओं के लाभ के कारण भिन्न मतदान कर सकते हैं। इसलिए 2019 का चुनाव "जाति बनाम विकास" या "जाति बनाम राष्ट्रवाद" का चुनाव नहीं था; यह "जाति + नेतृत्व + पहचान + कल्याण + संगठन" का संयुक्त चुनाव था।

9. आलोचनात्मक विश्लेषण

2019 के लोकसभा चुनाव में जातीय समीकरण आधारित मतदान व्यवहार का समालोचनात्मक विश्लेषण करने पर कई महत्त्वपूर्ण बिंदु उभरते हैं।

1. पहला, जाति भारतीय लोकतंत्र में अब भी एक जीवित और प्रभावशाली तत्व है। चुनावी दल उम्मीदवार चयन, गठबंधन निर्माण, बूथ-स्तरीय संगठन और संदेश-निर्माण में जातीय गणना का उपयोग करते हैं। मतदाता भी कई स्थितियों में जातीय संबद्धता, सम्मान और सामुदायिक हित को ध्यान में रखकर मतदान करता है।
2. दूसरा, जाति का स्वरूप बदल रहा है। अब चुनाव केवल बड़ी जातीय पहचान पर आधारित नहीं रहे। उपजातियाँ, स्थानीय समूह, क्षेत्रीय सामाजिक संरचनाएँ और लाभार्थी वर्ग नए चुनावी समीकरण बना रहे हैं। इससे चुनावी राजनीति अधिक जटिल हो गई है।
3. तीसरा, जाति और राष्ट्रवाद परस्पर विरोधी नहीं रहे। 2019 में भाजपा ने यह दिखाया कि एक दल राष्ट्रवाद और हिंदू पहचान की व्यापक भाषा का प्रयोग करते हुए भी जातीय स्तर पर सूक्ष्म सामाजिक गठबंधन बना सकता है। यह भारतीय राजनीति के लिए नया नहीं, लेकिन अधिक परिष्कृत रूप अवश्य है।

4. चौथा, विपक्ष की सीमाएँ भी इस चुनाव में स्पष्ट हुईं। कई दल अभी भी पारंपरिक जातीय आधारों पर निर्भर रहे, जबकि भाजपा ने सामाजिक विस्तार का प्रयास किया। उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा गठबंधन इसका उदाहरण है, जहाँ अंकगणितीय जोड़ सामाजिक रसायन में पूरी तरह रूपांतरित नहीं हो पाया।

5. पाँचवाँ, लोकतांत्रिक दृष्टि से यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि क्या जाति-आधारित मतदान राजनीतिक प्रतिनिधित्व को सुदृढ़ करता है या नागरिकता-आधारित राजनीति को सीमित करता है। इसका उत्तर सरल नहीं है। एक ओर जाति ने ऐतिहासिक रूप से उपेक्षित समूहों को राजनीतिक आवाज दी; दूसरी ओर अत्यधिक जातीय ध्रुवीकरण नीति-आधारित विमर्श को कमजोर भी कर सकता है। 2019 का चुनाव इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच स्थित दिखाई देता है।

10. तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

यदि 2019 के चुनाव की तुलना 1990 के दशक या 2000 के दशक के प्रारंभिक चुनावों से की जाए, तो स्पष्ट होता है कि जाति की राजनीति में गुणात्मक परिवर्तन आया है। पहले जाति-आधारित दलों का उभार मुख्यतः सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर आधारित था। आज भी ये प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं, किंतु राष्ट्रीय दलों ने भी जातीय सामाजिक इंजीनियरिंग को अत्यंत परिष्कृत रूप में अपनाया है। भाजपा जैसी पार्टी, जो कभी मुख्यतः ऊँची जातियों की पार्टी मानी जाती थी, 2019 तक आते-आते पिछड़े वर्गों और दलितों के बीच भी अपने लिए जगह बनाने में सफल हुई। यह परिवर्तन भारतीय चुनावी राजनीति में जाति के पुनर्संयोजन का संकेतक है।

दूसरी ओर, क्षेत्रीय दलों की चुनौती यह रही कि वे अपने पारंपरिक सामाजिक आधार से बाहर सीमित विस्तार कर सके। इससे यह स्पष्ट होता है कि समकालीन चुनावों में सफलता के लिए जातीय आधार आवश्यक तो है, किंतु पर्याप्त नहीं। उसके साथ व्यापक सामाजिक गठबंधन, राष्ट्रीय कथा, कल्याणकारी विश्वसनीयता और नेतृत्व की स्वीकृति भी आवश्यक है।

11. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत के 2019 लोकसभा चुनाव में जातीय समीकरण आधारित मतदान व्यवहार अत्यंत प्रभावशाली रहा, किंतु उसका स्वरूप पारंपरिक और एकरेखीय न होकर बहुस्तरीय, रणनीतिक और परिवर्तित था। जाति ने मतदाता के निर्णय को प्रभावित किया, परंतु यह प्रभाव राष्ट्रवाद, धार्मिक पहचान, नेतृत्व, सरकारी योजनाओं के लाभ और संगठनात्मक क्षमता के साथ मिलकर सामने आया। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों ने दिखाया कि जाति अब भी चुनावी राजनीति की केंद्रीय धुरी है, परंतु अब केवल पारंपरिक जातीय गठबंधन पर्याप्त नहीं हैं। भाजपा की सफलता का एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि उसने ऊँची जातियों के अतिरिक्त गैर-यादव ओबीसी, गैर-जाटव दलित और अन्य वंचित समूहों को अपने सामाजिक गठबंधन में शामिल किया। विपक्ष अनेक स्थानों पर इस नए सामाजिक पुनर्संयोजन को समझने और उसका प्रभावी प्रत्युत्तर देने में विफल रहा।

अतः 2019 का चुनाव इस धारणा की पुष्टि करता है कि भारतीय लोकतंत्र में जाति का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ है। बल्कि उसने स्वयं को नए राजनीतिक संदर्भों में ढाल लिया है। भविष्य में वर्ग, कल्याणकारी लाभ, शहरीकरण और शिक्षा के कारण मतदान व्यवहार में परिवर्तन संभव है, परंतु निकट भविष्य में जाति भारतीय चुनावी राजनीति का केंद्रीय तत्व बनी रहेगी। इसलिए भारतीय लोकतंत्र को समझने के लिए जाति को न तो अतिरंजित करना चाहिए, न ही उसे अप्रासंगिक मान लेना चाहिए। 2019 का चुनाव इस संतुलित निष्कर्ष की ओर संकेत करता है।

संदर्भ सूची

1. Banerjee, A., Gethin, A., & Piketty, T. (2019). Class and caste in the 2019 Indian election. *Studies in Indian Politics*, *7*(2), 241–253. https://doi.org/10.1177/2321023019874886
2. The role of identity politics in shaping voting behavior. (n.d.). *International Journal of Scientific Research in Science and Technology*.
3. Voter behaviour, political campaigning and caste mobilisation. (n.d.). *International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT)*.
4. *An analysis of the 2019 Indian general election*. (2019). Seoul National University Asia Center (SNUAC).

5. *Lok Sabha chunav 2019: Jatiya samikaranon par tay ho rahe hain partiyon ke ummeedvar* [Lok Sabha election 2019: Parties' candidates are being decided on caste equations]. (2019, April 15). Live Hindustan.
6. *Chunav mein ab bhi jati aur dharm hi tay karta hai voteron ka mood* [Caste and religion still decide the mood of voters in elections]. (2019, May 10). Navbharat Times.
7. *Lok Sabha chunav mein sthaniya mudde kamzor* [Local issues weak in Lok Sabha elections]. (2019, April 20). Amar Ujala.
8. *Matdan vyavahar: Bharat mein matdataon ki pasand* [Voting behavior: Choice of voters in India]. (n.d.). Dhruv Research.
9. Yadav, Y., & Palshikar, S. (2009). *Electoral politics in India: Structures, processes and patterns*. Oxford University Press.
10. Jaffrelot, C. (2003). *India's silent revolution: The rise of the lower castes in North India*. Permanent Black.
11. Pai, S. (2002). *Dalit assertion and the unfinished democratic revolution: The Bahujan Samaj Party in Uttar Pradesh*. Sage Publications.